**ओ३म्**

**‘अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि मनुष्योन्नति के सर्वोत्तम नियम’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

हमारा संसार किसी मनुष्य या मनुष्यों के समूह द्वारा बनाया गया नहीं है। यह सारी सृष्टि परमाणुओं से मिलकर बनाई गई है। इसे एक ऐसी सत्ता बना सकती है जो सर्वातिसूक्ष्म, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनादि, नित्य हो व जिसका स्वभाव ही सृष्टि का निर्माण व धर्मार्थ कार्यो को करना आदि हो। हमारी सृष्टि प्रत्यक्ष है अतः इस सृष्टि के उत्पत्तिकत्र्ता का अस्तित्व भी स्वयं सिद्ध है। यदि किसी को इस विचार व सिद्धान्त पर विश्वास नहीं है तो यह उसकी अपनी निजी समस्या है या तो इसका कारण अज्ञान हो सकता है या फिर हठधर्मिता व अन्य स्वार्थ पूर्ण विचारधारा। उदाहरणों से भी यह सिद्ध होता है कि यदि ईश्वर है तो उसे मानने में लाभ है और यदि वह न भी हो तो भी उसे मानने में कोई हानि नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य है कि दोनों ही स्थितियों में ईश्वर को मानने में ही सभी मनुष्यों की भलाई है। हम यदि अपनी शरीर रचना पर विचार करें तो सृष्टि रचना की भांति हमें अपना शरीर भी आश्चर्यजनक व चमत्कारिक प्रतीत होता है। आज आधुनिक विज्ञान जब कि यह मनुष्य का एक बाल व नाखून भी नहीं बना पाया, ऐसी स्थिति में यह मानना की यह पूरा शरीर जो कि एक बुद्धिपूर्वक सोच समझ कर की गई रचना है, बिना ईश्वर के स्वतः अस्तित्व में आ गया है तो यह हमारी बुद्धि की एक बहुत बड़ी भूल है। माता-पिता तो सन्तान को जन्म देने में एक प्राकृतिक उपकरण की भांति कार्य करते हैं। उन्हें यह पता नहीं होता कि माता के गर्भ में पल रहा शिशु बालक है या बालिका है। पशु-पक्षी एवं इतर प्राणी किसी विद्यालय में नहीं जाते परन्तु उन्हें भी सन्तानों की उत्पत्ति व आरम्भ के दिनों में उनके पालन का पूरा ज्ञान होता है। यह सब हमारी बुद्धि के लिए एक आश्चर्य ही प्रतीत होता है। अतः इस सृष्टि व प्राणियों के शरीरों को ईश्वरीय या अपौरूषेय रचना मानने में कुछ भी अनुचित नहीं है। हमें इस सिद्धान्त को हमेशा अपनी दृष्टि में रखना चाहिये कि बिना रचयिता के रचना नहीं होती है और हो भी नहीं सकती है। अतः इस सृष्टि, इसके सभी पदार्थ व मनुष्यादि प्राणियों को देखकर इसके रचयिता ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यह इस सिद्धान्त के अनुसार है कि जहां गुण प्रकाशित हो रहा हैं वहां गुणी का अस्तित्व होना अवश्यम्भावी होता है।

**मनमोहन कुमार आर्य**

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के 10 नियम बनाये जिनमें आठवां नियम है कि अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। यह नियम उन्होंने अपने गम्भीर वेदाध्ययन के आधार पर बनाया है। इस पर विचार करने पर सभी मनुष्य इसकी प्रशंसा करते हैं और इसे एक सभ्य मानव जाति के लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य किंवा अनिवार्य मानते हैं। विद्या का अर्थ है मानव बुद्धि का पूर्ण विकास व उन्नति। यदि बुद्धि उन्नत अवस्था में न हो तो फिर मनुष्य और पशु में केवल शरीर की रचना का ही अन्तर होता है अन्यथा अन्य कार्यों यथा भोजन करना, सोना व सुख एवं दुःखों का भोग करना आदि कार्यो में मनुष्य व पशु आदि सब समान हैं। अतः मानव को अपनी बुद्धि का पूर्ण विकास करना चाहिये। बुद्धि का विकास होता है माता-पिता व आचार्यों की शिक्षा से। इस शिक्षा को पूरा करने के बाद स्वाध्याय, विचार व चिन्तन तथा ध्यान के द्वारा अपनी विद्या व ज्ञान को बढ़ाया जाता है। स्वयं अपने अन्दर प्रश्न उत्पन्न करने पड़ते हैं। क्या ईश्वर है? है या नहीं? है तो कैसा है? यदि नहीं है तो क्यों नहीं? इसी प्रकार से अन्य अन्य विषयों में भी प्रश्नोत्तर कर व स्वाध्याय, चिन्तन व ध्यान द्वारा तथा अनुभवियों व ज्ञानियों की संगति से इच्छित प्रश्नों के उत्तर जानकर मनुष्य विद्वान अर्थात् विद्यावान बनता है। विद्या ही मनुष्य की श्रेष्ठ सम्पत्ति है। भौतिक धन के आने से मनुष्य में प्रमाद व अहंकार बढ़ता है, रोग उत्पन्न होते है और आयु घटती है परन्तु विद्या रूपी धन तो मनुष्य को विनम्रता सिखाता है व मृत्यु के भय से मुक्त करके मृत्यु के पश्चात मोक्ष की प्राप्ति कराता है। ऐसा कैसे होता है? इस प्रकार की विद्या से ईश्वर, जीवात्मा तथा कारण व कार्य प्रकृति का स्वरूप विदित हो जाता है। मनुष्य जान जाता है कि कितना ही धन क्यों न अर्जित कर ले, एक दिन मृत्यु अवश्य आयेगी और यह सारा धन यहीं छूट जायेगा। इसलिए धन कमाने से पूर्व स्वयं को और इस संसार को जानना आवश्यक है और इस अध्ययन से प्राप्त ज्ञान व विद्या से अपने जीवन की भावी योजना बनाना वा कर्तव्य निर्धारित करना आवश्यक है। अनेकों महापुरूष ऐसे हो गये हैं कि जिन्होंने इन प्रश्नों पर विचार करने के बाद निर्णय किया कि ईश्वर व जीवात्मा दोनों शाश्वत्, नित्य, अनादि, अनुपम, अविनाशी, अनन्त सत्तायें है। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ है और जीवात्मा सत्य, चेतन, आनन्द से रहित, आकार रहित, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, जन्म-मरण के चक्र में आक्रान्त, सुख व दुःख का भोक्ता है। वह जान गये कि मनुष्य व अन्य योनियों में जन्म लेने अर्थात् गर्भाशय में भी दुख है व मृत्यु में भी दुःख है। बीच के जीवन में सुख व दुख आते जाते रहते हैं। सुख स्थाई नहीं है यह रात्रि व दिन के चक्र की तरह आते जाते रहते हैं। अतः ईश्वर को जनाना, जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप को जानना, ईश्वरोपासना से अपने दुर्गुणों, दुव्र्यसनों व दुःखों को दूर करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। इससे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष प्राप्त कर जन्म-मरण से छूट जाना ही जीवन का उद्देश्य है। विद्या ही वह सम्पत्ति है जिससे मनुष्य ईश्वर, निज स्वरूप व प्रकृति के स्वरूप को जान पाता है ओर अपना कर्तव्य निर्धारित करता है।

आर्य समाज के नियमों में ही महर्षि दयानन्द ने बताया है कि ईश्वर सभी सत्य विद्याओं का मूल है अर्थात् सृजक व रचयिता है। ईश्वर ही सभी उत्पन्न पदार्थों का भी मूल है अर्थात् निमित्त कारण है। वेदों के अध्ययन वा विद्या की प्राप्ति से पदार्थों का स्वरूप विदित होता है। महर्षि दयानन्द के अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। प्रत्येक मनुष्य को उसी की उपासना करनी योग्य है अन्यथा उसे वह फल प्राप्त नहीं होंगे जो यथार्थ स्वरूप वाले ईश्वर की यथार्थ उपासना पद्धति से स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने वाला प्राप्त करता है। जीवात्मा भी सत्, चित्त, आनन्दरहित, निराकार, अल्पज्ञ और अल्प शक्तिमान, अजन्मा, अनन्त, अनादि, अमर, नित्य आदि गुणों वाला व कर्म-फलों का भोक्ता व जन्म-मरण का धारण करने वाला है। यह सृष्टि मूल सत्व, रज व तम गुण वाले परमाणु व कणों से मिल कर बनी है जो कि स्वभावतः जड़ है। इसमें संयोग-वियोग व स्थिति-प्रलय आदि कार्य यथा समय होते रहते हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में एक बड़ी खोज यह भी कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना कर आदि मनुष्यों को चार वेदों का ज्ञान दिया था। यह वेद सभी सत्य विद्याओं की पुस्तकें है। इनका स्वयं पढ़ना व दूसरों को पढ़ाना सभी मनुष्यों का सामान्य धर्म नहीं अपितु परम धर्म है। कारण यह है कि वेदों का अध्ययन करने पर मनुष्य को ज्ञान के चक्षु प्राप्त होते हैं जिससे वह इस संसार को यथार्थ रूप में जानने में समर्थ होते हैं। अन्य कोई मार्ग संसार को जानने का नहीं है। इस कारण से वेद का महत्व है। इस प्रकार हम विद्या के महत्व से परिचित होते हैं। अतः महर्षि दयानन्द का बनाया गया आर्य समाज का आठवां नियम कि अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि करनी चाहिये, संसार का सर्वोत्तम नियम है जिससे इस मृत्युलोक संसार को देवों का संसार बनाया जा सकता है। आईये, वेदों वा सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन का व्रत लेकर, ईश्वर के आदेश वा वेदाज्ञा, अविद्या के नाश व विद्या की वृद्धि के अपने कर्तव्य का पालन करें।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**